समाज क्या प्रगति के पथ पर है ?

मुनि विचक्षण विजय 'निर्मल'

यों देखने जावें तो हमें प्रगति ही नजर आती है, किन्तु वास्तविकता कुछ और है, प्रगति के मध्य में भी कहीं अवनति की खाई तो नहीं है। आज हमें प्रगति पर विचार नहीं करना है, किन्तु हमारी कुछ भूलें ही हमको स्वयं को देखना है। यह विचित्र बात है। विचित्र इसीलिये है कि आज तक हम अच्छाई ही चाहते हैं। आत्म प्रशंसा के इच्छुक हैं। जहां आत्म प्रशंसा है वहां ही आत्म-वंचना भी होती है। हम इस महत्व की बात को भूल जाते हैं और हम केवल मात्र नाम चाहते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रगति पथ पर बढ़ रहे हैं या हमारे कदम हमारे चरण प्रगति से दूर उठ बढ़ रहे हैं। यह महत्व का प्रश्न है, इस प्रश्न की विचारणा आवश्यक हो गयी है, क्योंकि हमें ज्ञात होना चाहिये कि हम प्रगतिशील हैं अथवा अवनतिमुख।

सापेक्ष दृष्टि से अगर कसौटी करने जावें तो यह ज्ञात होगा कि मैं स्वयं ही बहिर्मुख हूं, मेरी स्वयं की आत्मा पर परिणति पर-भाव में भटक रही है। इस तथ्य को अगर तथ्य मान लिया तो अवश्य ही हम अन्तर्भावी बन सकते हैं।

जहां विवाद है वहां धर्म नहीं। जहां कषाय भाव है, वहां कैसा धर्म ? जहां असमाधि है, वहां शान्ति कैसी ? धर्म एवं अधर्म प्रतिद्वन्द्वी हैं, कषाय एवं धर्म प्रतिपक्षी हैं। असमाधि एवं शान्ति भी प्रतिपक्षी हैं, तो देखिये हम किस ओर की पंक्ति में बढ़ रहे हैं। क्या कहीं हम कथनी और करनी में अंतर तो नहीं रखते। कथनी एवं करनी का अंतर ही आत्म वंचना का मूल है, यह भूल ही हमारी वास्तविक भूल है।

इस भूल को जब तक समाप्त नहीं कर लेते, तब तक विवाद, कलह, कषाय, असामायिक इत्यादि धर्म के प्रतिपक्षी के ही हम साथीदार हैं। हालांकि हमारा देखाव धर्म की ओर है, हालांकि हमारा व्यवहार धर्म की ओर है, किन्तु जिस केन्द्र पर हमारा लक्ष्य है, उस केन्द्र पर इन कुप्रवृत्तियों के सहारे पहुंचना तो दूर, परन्तु और भी दूर ही दूर होते जा रहे हैं, और यही हमारी वास्तविक अवनति है, फिर चाहे प्रगति के नाम पर हम विविध आयाम अपनावें, फिर भले ही हमारे दृष्टि जाल से हम कुछ भी करें, वह सभी आत्मिक दृष्टि से ग्राह्य नहीं, उपादेय नहीं, अपितु हेय है। इस तत्व को समझकर अगर सामयिक भाव से बढ़ेंगे, तो हमारा हर कदम, हर चरण लाभ के निकट होगा। नहीं तो वहीं आत्म-वंचना हमें अपनी आत्मा के गुणों से हटाकर गहरे दुःख देवेगी। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org